शान्ति सुमन

परछाईं टूटती

शन्ति सुमन के पास मध्यवर्गीय लोगों की दैनिक तकलीफों के बोध को मानवीय संवेदना का अंग बना देनेवाला गीत-तत्व है। जगह-जगह इस मजबूत सम्भावना के सबूत हैं कि यह गीत-तत्व मिट्टी और मशीन और उनपर काम करनेवाले मेहनतकश अवाम की शक्ति और मुक्तिकामी जद्दोजहद से एकरूप हो सकता है।

- महेश्वर

शान्ति सुमन के गीतों में मोहभंग की मनः-स्थिति के विभिन्न पक्षों को व्यक्त किया गया है।

- ओम प्रकाश ग्रेवाल

शान्ति सुमन के गीतों में सहज बिम्बधर्मिता है। जगत के बहुत सारे दृश्य, लोग, स्थितियां सब कुछ हैं। इनके गीत व्यक्तिगत स्तर से शुरू होकर सामूहिक रूप धारण कर लेते हैं।

- चन्द्रभूषण तिवारी

शान्ति सुमन के गीतों में वैसे तत्व मौजूद हैं जिनके कारण उनके गीतों से नवगीत की अगली संभावना संकेतित होती है।

- रामनिहाल गुंजन

मध्यवर्गीय जिन्दगी के आत्मीय प्रसंग, रोमानी संवेदना की धीमी आंच में सधी सघन अनुभूति और रोजमर्रे की वस्तुगत दुनिया से उठाये गये स्वस्थ और ताजे बिम्ब-शान्ति सुमन के गीतों का यही जीवित रचना-संसार है। इसके अलावा वर्ग-विभाजन पर आधारित समाज व्यवस्था के आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक संकट का अहसास और उससे मुक्ति की तीव्र छटपटाहट उनकी गीत-यात्रा की अगली कड़ी का सूचक है।

- नचिकेता

परछाईं टूटती

शान्ति सुमन

ईशान प्रकाशन,
मीठनपुरा, क्लब रोड, रमना,
मुजफ्फरपुर-२

© डा. शान्ति सुमन

प्रकाशक : ईशान प्रकाशन,
मीठनपुरा, क्लब रोड, रमना,
मुजफ्फरपुर–842002

प्राप्ति स्थान : 36, आफीसर्स फ्लैट्स,
जुबली रोड, नार्दर्न टाउन
जमशेदपुर – 831 001

द्वितीय संस्करण : 2010

मुद्रक : सनफ्लावर प्रिंटर्स
8, मुसलिम लाईब्रेरी, विष्टुपुर,
जमशेदपुर–831001

मूल्य : 100 रू. मात्र

PARCHHAEE TOOTATEE Rs. 100/- only परछाई टूटती/2

A Collection of Poems by Shanti Suman

मुकुल जो **अरविन्द** है

और

चेतना

को

।। प्रसंगवश ।।

प्रस्तुत संग्रह में 1971 से '77 तक रचे मेरे नवगीत एकत्र हैं। जब नवगीत लिखना शुरू किया था, तब मन में अनेकानेक जिज्ञासाएं थीं। धीरे-धीरे जाना कि वह मन नहीं रहा जिसको धूप से चोट लगती थी। रंग-बिम्ब धीरे-धीरे रंगहीन होते चले गये। इन गीतों में सर्जक मन की समस्त उत्साह-जन्य बाध्यताएं भरी पड़ी हैं। इन गीतों के प्रकाशन में इनसे जुड़े हुए क्षणों के मोह और अपनत्व ही मुखर हैं। दैनंदिन जीवन के तनाव, उन तनावों से मिली हुई छटपटाहट, घर-बाहर के संघर्षों के बीच पारिवारिक राग-संदर्भों की हरियाली - इन सबोंने मुझे रचने की प्रेरणा दी हैं। जिन्होंने मुझे दुखाया है, उन्होंने भी मुझे रचा है। वातावरण की घुटन अलग से एक चुनौती है मेरे लिये। निरन्तर अपने विरुद्ध हवाओं को झेलना, रचनाहीन स्थितियों को जीना मेरे जीवन का एक हिस्सा हो गया है। आजीविका इस हिस्सा का मूल विन्दु है। मुझे हमेशा लगता रहा है कि आर्थिक सुविधा के लिये जीवन का उतना सारा समय मैंने अपने विरुद्ध जिया है।

नवगीत-रचना के क्षण में मुझे यह महसूस हुआ कि इस प्रकार की रचनाओं में मानसिक उष्मा की अभिव्यक्ति ही अधिक हुई है। एक कमजोर व्यक्ति जिस प्रकार आरोप लगाता है और आरोप लगाकर ही मन को शांत कर लेता है, उसी प्रकार नवगीत में आरोप की यह प्रवृत्ति बहुत साफ है। इसी प्रवृत्ति ने उसको जुझारू होने से रोका है। फिर भी यह इतना जीवन्त गीत-क्रम तो है ही कि इतने वर्षों तक अपनी धारा में प्रवहमान रहा है। प्रायः दो दशकों तक जीवित रहनेवाली विधा अकारण और अनायास नहीं हो सकती। इसके जीवित आधार और स्रोत होंगे तथा इसके आगे इसका एक विशाल भविष्य होगा।

अब मुझे लगता है, नवगीत एक 'ग्रूपवर्क' था। उसी रूप में वह उभरा। निराला के गीतों में नवगीत के बीज अंकुरित होते देखे जा सकते हैं। उनका कोई पूरा गीत नवगीत नहीं है। नयी कविता में कुछ लोग लयात्मक रूप से लिख रहे थे। उन्होंने अपने प्रारूप में निराला के गीतों में बीजांकुर रूप में विकसित नवगीत की विधा का केन्द्रण किया। उन्होने मंच के सस्ते मनोरंजनपूर्ण गजलगोई के अंदाजवाले गीतों को पुराने गीतों

का पतन माना। छायावादी गीत उनकी दृष्टि में नव प्रतिष्ठित-मूल्यांकित गीत थे। निश्चय ही छायावादोत्तर नवस्वच्छंदतावादी गीत ही पिटकर उस स्थिति में मंच पर आये थे। नवगीत को उन अवमूल्यित गीतों से ही लड़ाई थी।

नवगीत को अपनी सार्थकता सिद्ध करने के लिए उपकरण थे। नयी कविता व्यक्तिगत अनुभव की आंतरिक सामाजिकता का दावा करती थी । नवगीत ने माना कि आंतरिक सामाजिकता नाम की कोई चीज नहीं होती है। हमारे अनुभव के पीछे सामाजिकता मूलभूत है। नवगीत ने पहली बार अनुभव को यथारूप व्यक्त किया। अपना लक्षण खुद जाहिर करने दिया। सामाजिकता का प्रमाण देने के लिए रचनाकारों ने खुलकर लोक-संस्कृति, ग्रामीण परिवेश के अनुभव,शैली-तत्त्व आदि ग्रहण किये। सामाजिकता का लिबास उतारकर नवगीत कभी नंगा नहीं हुआ, नयी कविता हो भी गई।

नवगीत को खारिज करने की कोशिशें भी हुईं। इसका आलोचनात्मक अध्ययन नहीं हुआ- कोटि-निर्धारण और श्रेणी-विभाजन भी नहीं। अंतर्वाह्य साक्ष्यों द्वारा इस बात की जांच नहीं हुई कि नवगीत की जहां तक स्वीकृति है - वह उसकी क्षमताओं का सहज प्रभाव ही है। इसी कारण से सुशिक्षित-अशिक्षित श्रोता-पाठक पर उसका प्रभाव समान रूप से पड़ा है। अस्वीकृति उनके द्वारा ही हुई जो नवगीत को अपनी राह के रोड़े मानते थे।

नवगीत में लोक-रंग -लोकगीतात्मक तत्त्वों का विकास - जन-जीवन की सामयिक परिकल्पना, जनचेतना की वैयक्तिक समझ के साथ फलीभूत हुआ है। सामान्य श्रमिक जीवन जैसे-जैसे राजनीतिगत होता जाएगा, अभिव्यक्ति का स्वभाव भी बदलेगा। इस बीच फिर से युवा पीढ़ी की वैचारिक जनवादी कविता के घोषित पूरक के रूप में जनवादी गीत का प्रादुर्भाव हुआ है। आलोचक फिर दायित्व भूलते हैं कि नवगीत के सामाजिक तत्त्व खासकर लोकसांस्कृतिक और ग्राम्य जीवन से सम्बद्ध तत्त्व; जो अनुभव, छन्द-लय और विचार के माध्यम से उतरते हैं, उन्हें नवगीत की उपलब्धि का विकास मानें। अधिक नहीं तो नवगीत ने अपनी तात्कालिक परिणति की उपलब्धियों

के रूप में गीत को कारगर भाषा, लोकसम्बद्ध लय-छन्द और वैचारिकता को मानसिकता में बदलने की सबसे महत्वपूर्ण तकनीक तथा अनुभव की निश्छल सामाजिकता की विशिष्टता प्रदान की है। अब भी कस्बों, उपनगरों, नगरों और महानगरों में यानी नगरीकरण की प्रक्रिया में, खेतिहर मजदूर और छोटे किसान का परिवर्त्तन और विकास, वेतनभोगी कामगार, औद्योगिक मजदूर और मध्यवर्ग के एकमेक श्रमजीवी जीवन की हैसियत से जिस नये चेतना-सम्पन्न मेहनतकश समाज की रचना कर रहा है, उसकी आज और आनेवाले कल की जुड़ावभरी मानसिकता -भावना और संवेदना के स्तर पर नवगीत की अगली ही शक्तियों द्वारा व्यंजित होने वाली है।

अन्त में, जो मेरे रचना-क्षण के साक्षी हैं और मेरे गीतों के अनन्य आलोचक भी - उनमें मित्र श्रीमती चन्द्रकला और पतिश्री जागेश्वर लाल के स्नेह इन गीतों के आमुख हैं। भाई नचिकेता का सद्भाव मेरे लिए अमूल्य है। वे जो दृश्यमान हैं और वे जो अनदिख, उन समस्त प्रेरणा-सूत्रों को अपना प्रणाम सौंपती हूँ।

शरत्-पूर्णिमा
1978

- शांति सुमन

परछाई टूटने के पहले

मेरा यह नवगीत संग्रह 'परछाई टूटती' १९७८ में बीज प्रकाशन, पटना से प्रकाशित हुआ था। आगे के वर्षों में 'सुलगते पसीने' और 'पसीने के रिश्ते' उसी प्रकाशन से आये थे। वह नवगीत का युवाकाल था और उसकी साँसों में उगती कोंपल और खिलते कनेर की खुशबू थी। उसकी संवेदना में भागते हिरनों की त्वरा और बाँस के फूटते कल्लों का उत्साह भरा था। वह साधारण जन जिसमें निम्नमध्यवर्ग और निम्नवर्ग की आकांक्षायें, सुख-दुख, संघर्ष सभी शामिल थे और उनको असाधारण तरीके से सहज बनाने की कोमल जिद भी थी, पर सबके ऊपर थे वे उजलाये सपने जिनको युवावर्ग की साझीदारी में नवगीतकारों ने अपने मामूलीपन से उबरने के लिये ताजे बिम्बों, प्रतीकों, लय-छन्दों से विन्यस्त गीतों में जुगाये थे। तब नवगीत जीवन-मूल्यों का पर्याय भी था। सबसे बड़ी बात यह भी थी कि नवगीत ने छन्द को पुनर्प्रतिष्ठित किया था। उन दिनों भी जब नवगीत गंगोत्री से निकलनेवाली गंगा की तरह डेग भर रहा था, यह केवल आत्मानुभूति नहीं था। सामाजिक सरोकार की संवेदनायें तब भी इसमें भरी हुई थीं।

सामाजार्थिक कारणों से लगातार भयावह हो रहे समय-समाज से जिसतरह कोमलताएँ, भावनाएँ और संवेदनायें - कहना चाहिए कि मनुष्यता की पूरी अनुगूँज ही समाप्त हो रही थी, नवगीत ने मनुष्यता की जिजीविषा को बचाये रखा, जीवन की इच्छा को बचाये रखा और सबसे बढ़कर मानवीय सम्बंधों की ऊष्मा को बचाये रखा जिनकी निरंतर कमी महसूस की जा रही थी।

मध्यवर्ग में केवल ढुलमुलपन ही नहीं होता। यह सच है कि मध्यवर्ग की उजली कमीज के नीचे की गंजी मैली होती है, पर यह उसकी कमजोरी, द्विधा या वैचारिक विवशता नहीं है, साधारण आमदनी में उन्नत जीवन जीने की लालसा के पीछे जो द्वन्द्व, तनाव और संघर्ष होते हैं, वे नवगीत में जिस सहजता और आत्मीयता से व्यक्त हुए हैं, वे अत्यंत विलक्षण और अभूतपूर्व हैं।

उन दिनों नवगीत के विरोधों ने जो झंझावात पैदा किये उनसे नवगीत को और भी ऊर्जा

मिली। उनसे नवगीत की अजस्र उत्सव-भंगिमाएँ प्रकट हुईं। कदाचित् नवगीत को अपनी परिणति के लिये उन परिस्थितियों से वस्तुरूप में बहुत कुछ मिला और उसने आगे बढ़कर अपने को सार्थक और सिद्ध किया।

वस्तुतः यह 'परछाई टूटती' का दूसरा संस्करण है। पाठकों, शोध छात्रों एवं मित्रों के आग्रह पर इसका पुनर्प्रकाशन संभव हुआ है।

उन दिनों मेरे परिवार में मेरे पति और बच्चों में केवल मुकुल और चेतना थे। बाद में '८७ में विशाखा और '८९ में सुशान्त शामिल हुए। अब तो शालीना, ईशान, अपूर्व और श्रेयसी भी नवगीत के रंग पृष्ठों की तरह हैं। इसमें पहले संस्करण का सब कुछ पूर्ववत् है। केवल प्रकाशन, मुद्रण और मूल्य नये हैं। अपने परिवार और मित्रों का आत्मीय अनुबंध स्वीकारने के साथ ही इस संग्रह के मुद्रक सलफ्लावर प्रिन्टर्स के प्रति भी स्नेह प्रकट करती हूँ।

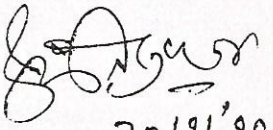

वसंत पंचमी, २०१०
३६, आफीसर्स फ्लैट्स
जुबली रोड, नार्दर्न टाउन
जमशेदपुर-८३१००१
मो. ९४३०९१७३५६

सिलसिला

प्रसंगवश	: 5	चेहरे का ताप	: 36
परछाई टूटने के पहले	: 9	सुलगते सवाल	: 37
नागकेसर हवा	: 15	कामोद बजा पुरवा का	: 38
मेघना	: 16	पातों ने रचे सुख	: 39
एक कतरा सुख	: 17	बरफ की उंगली	: 40
चीखों के पहरे	: 18	धूल की परतें	: 41
सांपों के जंगल	: 19	मन ग्लेसियर जैसा बहा	: 42
सूर्यमुखी गहनाई	: 20	खुरदरी हंसी का बचपन	: 43
जंग लगे हंसिये	: 21	मेघ-तरु फूले	: 44
शब्द शोर के	: 22	दुपहरों की सनसनी	: 45
चौमुहानी बहस	: 23	नदियां गढ़तीं धोखे	: 46
रोशनी घरों में	: 24	रूमाल भरे हाथों में	: 47
परछाई टूटती	: 25	भीगी-सी सुबह	: 48
चले आये दिन	: 26	भौंह के तनते सिरे	: 49
तुम आये	: 27	दलदलों पर पांव	: 50
अलग मजमून	: 28	टूटती चट्टान	: 51
जंगल कुहरों के	: 29	उजले-हरे सवाल	: 52
रोशनी की मौन भाषा	: 30	लक्ष्य के पठार	: 53
नाव-सी इच्छा	: 31	अंधेरे में आंखें	: 54
दिन पहाड़ बो गया	: 32	अन्दरुनी सन्नाटे	: 55
काठ के सपने	: 33		
खुद को टेरते	: 34		
रेत-रेत हो गयी	: 35		

सिहरे दो पल : 56
बलुआहे घाव : 57
बादल लौट आ : 58
खुली हथेली पहने : 59
आंखों में घुलते आभार : 60
अंतरंग बातें : 61
जहर चांदनी का : 62
अखबारों पर भविष्य : 63
दिन अखबार-सा : 64
अंधेरे के पांव : 65
इंतजारों मे बुना साया : 66
शीशे-सी चनकी मुस्कान : 67
गुच्छों के गुच्छ गुलमुहर : 68
ताल का दर्पण : 69
जलती सुबह : 70
रोटी का स्वाद : 71
गंध लिखी देहरी : 72
होंठ के आखर : 73
हँसी-हँसी में : 74
सुआपंखिया शाम : 75
जलगीत : 76
याद-घर लगते मखान से : 77
सूरज के रंग : 78
कोई बच्ची : 79
पानी के पांव : 80
रोली-सिन्दूर सने : 81
नाम और पते : 82
झुलसी हुई मछलियाँ : 83
उदास लोग : 84
उजली सौगंध : 85
मशाल की तरह हुए हम : 86

परछाई टूटती

।। नागकेसर हवा ।।

मुट्ठियों मे बन्द कर ली
नागकेसर हवा

एक तिनका धूप लिखती
है भला-सा नाम
देखना फिर अतिथि
आयेगा तुम्हारे गाम
सर्दियों में नरम हाथों
से धरा कहवा

गेहुँओं की पत्तियों पर
छपा सारा हाल
फुनगियों पर दूब की
मौसम चढ़ा इस साल
रंग हरे हो गये पीले
बात में मितवा

एक चिड़िया चोंच भर
लेकर उड़ी अनबन
भाभियों के खनकते
हाथों हिले कंगन
स्वागतम् गूंथी हथेली
धो गयी शिकवा.

किस हाथ चुनोगी सीपी औ' शंख, मेघना
मोती की देह जो हुई

लहर टूट जाती कांपते कगारों से
नये आसमान को तलाशती
मरी हुई तितली के तन-सा सागर तट
अहिवातिन हवा होंठ ताकती
रेतों के जो होते मयूर-पंख, मेघना
हो जाती छुवन अनछुई

यहां से गुजरतीं फ्राक पहन ऋतुएं
नावों पर शीशे चमकाती
शब्द भर न सो पायी जो आंखें
सूती कुरते-सी सूख जातीं
चूमे रंगे पांव पानी का पंक, मेघना
पोर-पोर चुभोता सुई

झरते यहां सातरंग झरने
वासवी नदियां इंगुर की
जिद्दी-सी लड़की रोज तोड़ रख जाती
रुनझुन की बोर चांद नूपुर की
शीशमहल-सा कौंधे जलमयंक, मेघना
आँख-आँख अनलिखे गई.

।। एक कतरा सुख ।।

पन्नियों-सा उड़ गया दिन
राख-सा मौसम
और अपनी आंधियों में कैद हैं हम-तुम

जिन्दगी को इस तरह जीने में
भी है एक मजा
आदमी खुद को गिरहकट-सा
दिये जाये सजा
एक ही तस्वीर से भरता गया अलबम

धुंध ऐसी
सोखती जाये बदन की ताजगी
कौन कह दे
अजी छोड़ो बुरी यह नाराजगी
कई टुकड़ों में बंटा आकाश का परचम

तालियों का शोर औ' दम तोड़ते
ये कहकहे
पाँव पर लिपटे हुए सीमान्तकों
में यूं दहें
एक कतरा सुख न था इन जंगलों में कम.

।। चीखों के पहरे ।।

गूंगे चौराहे, नगर, गांव बहरे हुए
कहां रुकूँ, रोपूँ पांव ठहरे हुए

एक इमाम के पीछे
पढ़ते सभी नमाज
बोल रामायण के
धुन में है जाज
रात गये देखे ख्वाब जहरमुहरे हुए

अखबारों, सड़कों पर
भूख औ' अकाल
बाढ़ पीड़ितों के दुख
सुनते कंगाल
अंधेरे के बुरादे देश नहीं कुहरे हुए

लूला समाजवाद लिए
कैंचियां जवाबी
एक अदद प्रश्न-सा
चेहरों पर हाबी
हाथ-पांव पर चीखों के पहरे हुए.

।। सांपों के जंगल ।।

गांठ बंधी हल्दी से
रंग छूटे उम्मीद के
कैसे सोयें सांपों का जंगल खरीद के

चम्पा, जूही, कनेर
फूलों के नाम याद थे
अब लगता है
उत्सव में कटे हाथ थे
दीमक ने चाट लिये चित्र हम शहीद के

इतना-इतना थके
अब थकन नहीं होती
गांठों में सर्दियां
झुनझुनी नहीं बोती
होली में पहन लिये कपड़े धुले ईद के

बागमती ने जब भी
घर-आंगन डुबोये
चिड़िया, मछली और
लोग-बाग संग रोये
पन्ने फाड़ दिये तभी हम सबने तौहीद के.

।। सूर्यमुखी गहनाई ।।

सिरहाने इन्द्रधनुष टूट गया
खुली हुई हथेली है और कुछ बहाना
ओ रे ! सागर-सुख मैने भी जाना

सुख जो घर में जन्मा दरवाजे पर खतम हुआ
आइना चटखते ही घुटने भर पानी में डूब गया
ऐसे में नाम धरूँ, बोलूँ या चुप होऊँ
पर सब कुछ तो है अनजाना
ओ रे ! सागर-सुख मैने भी जाना

खिलते ही सूर्यमुखी गहनाई मूक हुई
फसलें हस्ताक्षर की स्याही-सी सूख गईं
इतिहासों के परचे लिख आये
इतना तो सच है बतियाना
ओ रे ! सागर-सुख मैने भी जाना

होने को होता है वह किन्ही सवालों में
या जबाब देने को छूटी-सी जगहों में
जिधर दिखे उधर खुली आंखों का पानी
सुबह नहीं होती है रात गुजर जाना
ओ रे ! सागर-सुख मैने भी जाना.

।। जंग लगे हंसिये ।।

कोने में रक्खे-रक्खे दिन
बहुत पसीजे हैं
कुछ ज्यादा ही तेज
आंधियों पर हम रीझे हैं
सूख रहे धूपों के टुकड़े
फटे अंगोछे-से
कई मसीहे अन्धे
थाम मशालें अच्छे से
फटी तलहथी पर अपने से
ऐसे खीझे हैं

चढ़े खरादों पर जब से
ये जंग लगे हंसिये
धुरी कहां हम हुए, हमें तो
होने थे पहिये
भांड़ों पर रखे कनस्तर में
यों कब से सीझे हैं

ऐंठ रहे पेटों में जाने
कब से घाव भरे
जैसे होश हुए वैसे
जख्मों पर नमक गिरे
कहने को सूखा है
खड़े किनारे भीजे हैं.

एक-एक कर रिसता चला गया है दिन
केवल कैलेन्डरों पर टिका हुआ है दिन

किसी खौफ-सा लदा पड़ा
है कस्बा मरा हुआ
नियति बदलने की खुशफहमी
में ही खड़ा हुआ
मरन नहीं उतना पेचीदा बना हुआ है दिन

कितना बड़ा फिजूल लगा
अपना होना-जाना
और भले चेहरों पर
किसी लुटेपन का आना
चौतरफ कसे गिलासों-सा कसा हुआ है दिन

गुम होते ही गये हवा में
शब्द शोर के सुनते
कटे-अधूरे लगे सभी
कुछ अंदर-बाहर बुनते
बीच सड़क पर कटा पंख-सा पड़ा हुआ है दिन.

।। चौमुहानी बहस ।।

अब न जूठे बर्तनों-से दिन
उबासियां लेते हुये गुजरे

मुट्ठियों से कसे खुद को भींचते
हम हवा का रुख रहे महसूसते
नहीं पाये थपेड़ों को गिन
चौतरफ इतने कड़े पहरे

चुप लगाकर आंख सब सहती हुई
कलाई पर लहठियां तपती हुईं
लाख यह मौसम चुभोये पिन
हवाओं के खुल रहे पिंजड़े

चोमुहानी बहस कालिख-दाग-सी
रुइयों के घर बिकी हो आग-सी
भूख की बारूद का ले टिन
काफिले हर मोड़ पर ठहरे.

।। रोशनी घरों में ।।

लौट रही रोशनी घरों में
जैसे कुछ खोया अधरों में

खामोशी में हिलते पर्दे
उड़ रहे किताबों से गर्दे
आ जाना गीत के स्वरों में

लगती सब परिभाषा झूठी
कच्चे पीतल की अंगूठी
सोने की ईंट बादरों में

दिन कोई भूला बनजारा
पेड़ों का ले रहा सहारा
होती हूं बन्द अक्षरों में.

।। परछाई टूटती ।।

परछाई टूटती
हल्दी के अंगों से उबटन-सी छूटती

हवा-हवा एक हुई
गीतों की टेक हुई
दूर अंधेरे में कोई कोंपल फूटती

धूप-छन्द चट्टानें
इन्द्रधनुष सिरहाने
यादों की बिटिया अंगूठे को चूसती

नदी से, गलीचे से
पैरों के नीचे से
डूबते किनारों की बातें दो टूक-सी

जानें हम-तुम कैसे
घुले-मिले रंगों-से
शामों की सैर आसमानों की रुख्सती.

।। चले आये दिन ।।

चले आये अकेले दिन बहाने से
लो, उड़ी खुशबू कि जय साबुन लगाने से

रोशनी का पुल नदी में
इत्र का झरना
देवदारों के वनों में
नथों का गिरना
चल रही पुरवा पहाड़ी धुन बजाने से
भागती बेटी कोई ऊँचे घराने से

प्यार पेबन्दों सिले
गठरी लिये कोई
फटी अंगिया में छिपाये
क्रोशिया कोई
चुप हुआ मौसम कि वर उबटन लगाने से
पकड़ ली जाये कोई महुआ चुराने से

प्यास भी तिलमिलाये
बूंद भर जल को
सूर्य और समुद्र में
घिरे मन पल को
चांदनी की लतर कांपे गुनगुनाने से
हिले कंगन हाथ के ज्यों गुदगुदाने से.

।। तुम आये ।।

तुम आये जैसे पेड़ों में
पत्ते आये

धूप खिली, मन-लता खिल गई
एक पर्त्त-दर-पर्त्त छिल गई
हाथ बढ़ाया जिधर टूटकर
छत्ते आये

रही-सही पहचान खो गई
यहीं कहीं दोपहर हो गई
यादों के खजूर
रस्ते-चौरस्ते आये

थोड़ी ठण्डक ज्यादा सी-सी
मीठी-मीठी बात सुई-सी
मौन-मधुर विश्वासों के
गुलदस्ते आये.

।। अलग मजमून ।।

जबसे आये है तब से
वैसे ही गले लगे हैं
कभी नहीं लगता पर वे
अपने हैं बहुत सगे हैं

हिस्सेदार बहुत थे आये
चले गये सुविधा के
और अभी तक हमीं नहीं
पहचाने हाथ हवा के
अगल-बगल जाने कितने
ही चाकू तेज उगे हैं

छूटे नहीं छुड़ाए इतने
घाव पड़े पानी के
रोटी के मजमून अलग हैं
इस खींचातानी से
सरेआम नीलाम हुये
वादों के हाथ ठगे हैं

कितनी भारी होती है
भीगी गठरी गूदड़ की
कड़की ठण्डक में जोयी
हमने फलियां गूलर की
खेतों में गिलहरियों के
पांवों पर बहुत भगे हैं.

।। जंगल कुहरों के ।।

ठंड ने उगाये हैं जंगल कुहरों के

मंदिर के कलशों पर सुबह हुई
देहों भर टूटन बेवजह हुई
देखे हैं सांझ गये हंसे रंग लहरों के

हवाओं में पत्तों के हाथ हिले
नींद की कथाओं में गये सिले
खिड़की-दरवाजों में आलस दुपहरों के

पत्रहीन आंगन में फूल उगे
पाँवों में मेहंदी के गांव जगे
आसमान हुये जाते हाथ महानगरों के.

।। रोशनी की मौन भाषा ।।

कहीं गहरे बहुत गहरे दर्द उठता है

आसमानों के तजुर्बे
बादलों की कन्दराएं
और पानी की सतह से
चौमुखी उठती हवाएं
पठारों पर कहां कितना सूर्य झुकता है

फूल, पत्ती, जड़, तना है
सांस पर कुहरा घना है
बेंत-वन की घाटियों में
बैठना-उठना मना है
जंगलों में सुख कहां अहसान दुखता है

रोशनी की मौन भाषा
चांद से झरती निराशा
आंधियों में लड़खड़ाती
पत्तियों का दम-दिलासा
पत्थरों की नींद में कोई सुबकता है.

।। नाव-सी इच्छा ।।

रेंगता दिन फड़फड़ाती शाम
एक खत दिन डूबते के नाम

नाव-सी इच्छा नदी का साथ
दूर हिलते रूमालों के हाथ
अंधेरे में टूटते आयाम

रेतीले चेहरे दोस्त-अहवाब
जैसे घर की कुर्सियां-किताब
शोर-शराबों में क्या होगा राम !

ठण्डे वादे और धूप-हवा-रेत
आंखों में पिछली बरसातों समेत
कहां के कहां रहे सिलसिले तमाम.

।। दिन पहाड़ बो गया ।।

यहां रेत-रेत वहां आग-हवा-पानी
धूप-छांह-रंग करे कितनी मनमानी

मौलाया सूर्यमुखी
दिन पहाड़ बो गया
कैसा तो अभी से
दलदल मन हो गया
श्मशान चम्पाएं लिए अनाकानी

उड़ती शीशे में --
सोन-चम्पई तितलियां
मधुबनी कलाओं-बुनी
अजन्ता-उंगलियां
होंठों से छू लें ये छवियां पहचानी

आंखों की लाली
धूल बड़ी भली लगी
माथे की शिकन और
मीलों लम्बी दिल्लगी
जुड़ी हथेलियां कितनी मुस्कानें छानी.

।। काठ के सपने ।।

काठ के सपने शहर आये
देखते जैसे कि डर आये

रह गई कटके वफादारी
आज का दिन सौ गुना भारी
आंख से पहले अधर आये

तोड़ करके रख गईं बातें
मोम-तिनकों-सी नरम रातें
फूल थे, वादे बिखर आये

कह रहे हो, लो मैं गाती हूं
धूप से तितली बनाती हूं
रास्ते में याद घर आये.

।। खुद को टेरते ।।

यह दिन भी बीत गया
लो, खुद को टेरते

धूप-हंसी छूट गई
किरन-डार टूट गई
फूल झरे तुलसी के चौरे
कनेर के

भेद आसमानों के
गीत ये पियानों के
हौसले मकानों के घिर गये
मुंडेर से

मुट्ठी भर पेड़ खड़े
डार-पात के नखरे
मुंह ढंक के पड़े हैं किनारे
गदबेर-से.

।। रेत-रेत हो गयीं ।।

लगते हैं वे दिन चुम्बन के दाग-से
सूख गये हैं ताल, मर गईं
सब-की-सब रंगीन मछलियां
फिर भी जुड़ती रही हवा यह आग से

अब कैसे इनकारें
जो दिन जिये गये हमसे
पछतायें भी कैसे वे
अनुबंध सघन हमसे
पातझरे ये पेड़ विवश हैं काग से

रेत-रेत हो गईं
पांव से बंधी हुई यात्राएं
कटी हुई उंगली-सी
लगती अपनी ही छायाएं
मौलाये अड़हुल माथे पर पाग-से

बंधे हुए पानी की
गंध समाई फूलों में
ये अकाल क्षण कैसे
पंख पिरोयें कूलों में
बागमती ने रंग उड़ाये फाग-से.

।। चेहरे का ताप ।।

नदी का बहता हुआ जल थम गया है
शोर चिड़ियों का अब मुझमें जम गया है

कन्धे तक झुकी हुई रात
बेरोजगार मां-सी
सुबहें बासी मुँह लिखतीं
उजली ओ-ना-मा-सी
चेहरे का ताप कितना कम गया है
सूखता-सा करोटन मौसम नया है

हुई होती और कोई जिद
तो कितना भला था
इस ठहरती जिन्दगी का भी
अलग ही सिलसिला था
एक पग के बाद सीधा दम गया है
धूप गिरवी पड़ी, खुद को कुछ हुआ है.

।। सुलगते सवाल ।।

तुम्हे याद करते हैं लौटते हुए
बादल ये मोड़ पर रुके हुए

थमी हुई निगाहों में
सुलगते सवाल भरे
सूख गई कोंपल के
कई काफिले गुजरे
तुम्हें माफ करते हैं ऊंघते हुए
पाखी ये पेड़ पर झुके हुए

बांधा पर बंधी नहीं
अनमनी दिशाएं
वनपर्शों की बस्ती
क्या रोयें, क्या गायें
तुम्हें प्यार करते हैं सोचते हुए
जंगल ये रेत पर थके हुए

तहाकर नाम और पते
संबोधन जोड़ते रहे
अनलंघे पहाड़ों पर देर तक
अपना सिर फोड़ते रहे
तुम्हें विदा करते हैं बींधते हुए
मौसम के धान ये पके हुए.

।। कामोद बजा पुरवा का ।।

बाजूबंद खुले बूंदों के
शहर तुम्हारा गीत हो गया
परछाई में यादें गमकीं
कस्तूरी मनमीत हो गया

साथ-साथ भीजे हम
मौसम अनबरसे बरसे
कजरी-कजरी गली बुलाये
निकले जब घर से
भीग रही गंधों से मैंने
जाना हारा जीत हो गया

अंकुर-अंकुर फसल फूटती
गजरीली बाँहों में
शोखी भरी आंख में लौटे
पाखी दिन राहों में
सुर कामोद बजा पुरवा का
हाथों भरा अतीत हो गया

होंठों पर धर हाथ
बुलाये फिर से बादल को
तिनका-तिनका रीझ गये
मौसम पर पल दो पल को
फाहे जैसे परस न जानें
कब यह तन हिम-शीत हो गया.

।। पातों ने रचे सुख ।।

चिड़िया को लेकर झूलने लगी
फूलभरी डाली-सी टहनी
तेरा यह रंग बड़ा प्यारा है
बड़ी खूबसूरत अनकहनी

होंठों-सी जुड़ी महीन पत्तियां
बरखा में
भीगती हुई पतंगों की डोरें
भर थामे
बस इसी तरह कुछ भूलने लगी
हल्दी की देह खुशबू-सनी

घने पेड़, अनमने बादल तिकोने
धूप के
हरे-पीले पातों ने रचे सुख
रूप के
बेगमबेलिया फिर फूलने लगी
आंख ने छोटी हंसी पहनी.

।। बरफ की उंगली ।।

जामुनी कुहरी हवा में झूलती झूले
सांस-गंधों में धुले आभार गजरीले
विदा के क्षण वे
हाथ पर होंठ धरे

एक अदद रेखा
स्लेट पर खिंची हुई
बरफ की उंगली
चुभती हुई सुई
फालसाई हुए उड़ते रेत के बगूले
झुके माथ उजले किरन-कलश धरे

चाय नीबू की
भरी कांच के प्याले
ओस पहने पांव
कच्ची कोंपलों वाले
कत्थई अंधेरों के गली-गांव फूले
खानाबदोश मौसम फिर होते हरे.

।। धूल की परतें ।।

करने लगी हैं दिल्लगी मुझसे
धूल की परतें

बंधे पांवों में सुबह से सफर मीलों के
बारजे, कमरे, घरों तक चुभें कीलों-से
झरने लगी है रेत आंखों से
वेवजह हंसते

लगते हैं दिन लम्बे-से पुराने मुहावरे
आंख मलते धुंआये खपरैल खीजते खड़े
बाढ़-चढ़ी गंडक के हौसले
कम कहाँ करते

बंटे हुए नारों में बांटकर तमीज अपनी
कहां कितना सियें फटी कमीज अपनी
सीमाएं फैलीं, नींदों के
पंख गये झरते.

।। मन ग्लेसियर जैसा बहा ।।

चांदनी के गांव ने
इस आंच को भी कब सहा
देखते-ही-देखते मन ग्लेसियर जैसा बहा

कामगर के पांव-सा
आकाश फटता खुरदुरा
झपकियां लेता हुआ वातास
ढोलक बेसुरा

एक छोटा झूठ केवल झूठ-सा कबतक रहा
क्रास पर लटका हुआ जो सांच अबतक अनकहा

चाटते आये जितनी ओस
उतना ही कंठ जला
हर सुविधा नंगी बेहद
सुन्दर शकुन्तला

अंधेरे का हाथ लम्बा हुआ जाता जो गहा
रोशनी कब की अदेखी, बालुओं का घर ढहा.

।। खुरदुरी हंसी का बचपन ।।

बीतने को बीतते हैं दिन
चुप्पी को तोड़ते हुये

खुले आसमानों की एक रात
एक नग सूर्यमुखी खिला हुआ
जैसे कश्मीर की कहानी में
राजपुत्र कोई भूला हुआ

लगने को लग जाता है मन
खामोशी को पीते हुये

खुरदुरी हंसियों का बचपन
जाने कब स्याही बन ढरका
नाम-गाम लिखा हुआ लिफाफा
सही पते पर भी जा भटका

सुगंधों के दागों-से तन
खुद को ही जोड़ते हुये.

।। मेघ-तरु फूले ।।

मेघ-तरु फूले
साथ थे, कुछ दूर चलकर रास्ता भूले

हवा के ये महल झोंके
बीन बजते घोंसलों के
बरुनियों के देवदारु तले पड़े झूले

कब कहां, ये छूट जायें
धान-बाली फूट जायें
आंख से देखे, उठाकर हाथ से छू ले

धूल-माटी के घरौंदे
आँधियों के पांव, पौदे
दस दिशा, दस हाथ, फिर भी लग रहे लूले.

।। दुपहरों की सनसनी ।।

पांव को छू धूप अब धीरे
कमर तक हो गई

टहनियों पर भली लगती
गरम आहट गुनगुनी
पसरकर सोयी वहां पर
दुपहरों की सनसनी
कन्धों पर झुकी हुई आंखें
लहर-सी बो गईं

सिसकारती हुई आवाजें
पीती प्यालियां
बातों के टुकड़े जोड़तीं
कमरों की जालियां
परदों से ढँकी खिड़कियां
हथेली हो गईं

घंटों इस तरह दिखती हुई
अजन्ता याद आती
आंख मुंदे प्रशंसा पिए
उंगलियां थरथरातीं
अलग क्षण के अलग ये किस्से
नींद ही खो गई.

।। नदियां गढ़तीं धोखे ।।

सुबह-सुबह उठकर
आँखें टंग जाती नारों से रंगी दीवारों पर

खत्म चुनावों के दौरे
फिर लोग थके-हारे
सड़कें स्याह हुईं, पिघले
गम-डूबे गलियारे
बिनावजह जीकर
जाते ही खो गये भीड़ से धुने कगारों पर

कौन कहेगा दर्द किसी
खुशबू के भीतर का
सोना बिका उधार
मोह गहनाया पीतर का
इसी तरह सहकर
धूसर बृक्ष हुआ धूलों से सने पहाड़ों पर

सूरज ने जल सोख लिए
नदियां गढ़तीं धोखे
सावन का रथ रुका रहा
गुजरा न इधर हो के
लहरों को कहकर
कोई शंख इधर आ जाता भरे किनारों पर.

।। रूमाल भरे हाथों में ।।

विदा हो गये
पीले पन्नों भरे दिन जुदा हो गये

जंगलों में सीटियां
गूंजने लगीं
अलविदा आवाज
आंखें मूंदने लगी
गुलदान फूलों पर फिदा हो गये

यात्रा पर गये पाखी
मुड़े तक नहीं
रूमाल भरे हाथों में
कंपकंपी हुई
मौसम के नाम तयशुदा हो गये

जब से आये तब से
ऐसे अलग खड़े
अजनबी पाहुन ये
सुख हुये बड़े
उलाहने जैसे मसविदा हो गये.

।। भींगी-सी सुबह ।।

भींगी-सी सुबह, हवा सीटियां बजाये
फसलों की फुनगी पर शीत फुसफुसाये

दूर बहुत यहां-वहां मेड़ों का छूटना
हरियाली बीच कहीं लावे का फूटना
नीलकमल जैसे रूमाल फड़फड़ाये

इकहरी किरनों का जालों पर कांपना
कानों के बुन्दे-सा गालों पर थापना
शीशे पर धूपों के पांव छहल जाये

घुटने भर पानी मछलियों का नाचना
खांचों के संग मधुर अन्तर का बांचना
बिजली के तारों पर पंख सिहक जाये.

।। भौंह के तनते सिरे ।।

अब नहीं दीखतीं कहीं परछाइयां
ताल हो या हो नदी का जल

धुआं-धुआं हो गई इतनी
चांदनी चुनती हुई उपलें
कतरनें चिपकी हुई जड़ से
हांफती बिन प्यास नीम-तले
नहीं केवल तोड़तीं मँहगाइयां
काढ़ते फण चौतरफ के छल

कल यहीं से काफिले गुजरे
सूर्य को ताबीज-सा बांधे
दिशाएं लेती आलाप-सी
भयानक सुर कंठ में साधे
हाथ तक पहुंची हुई बिवाइयां
भौंह के तनते सिरे होते नहीं ओझल

टूटती है अब नहीं पत्थर बनी
साथ भी चलती हुई चुप्पी
फर्क क्या यह कहा हो या अनकहा
नये ब्लेडों को दबाये बंद कर मुट्ठी
स्वास्थ्य पीने निकलती हैं दवाइयां
इन्तजारों में खड़ा होगा हमारा कल.

।। दलदलों पर पांव ।।

ये हवा की देह पर निकले चकत्ते
इन दिनों अब साफ दिखते हैं

यह गजब की ठण्ड
और यह उमस बेहिसाब
बड़ी मुश्किल पढ़े कोई
समय की कितनी किताब
दिन-ब-दिन छोटे हुये ये नये पत्ते
पांव में फटती बिवाई हाथ लिखते हैं

काट सकते काट लेते
यह हंसी-सा आसमान
काश, बोते बीज जिनके
बिन तपे हैं बियाबान
उघड़कर बदरंग होते जा रहे गत्ते
फटी गंजी पर उमर के बोझ बिकते हैं

पेशियां सुलगा रही हैं
बन्द तालों में उबाल
ढेर-सी फन्तासियों के
उधर हिलते हैं रूमाल
टूट औंधे मुंह गिरे शहद के छत्ते
दलदलों पर पांव जैसे नहीं टिकते हैं.

।। टूटती चट्टान ।।

टूटती
चट्टान दिन की

फूल पैरों पर खड़े हैं
रगों में कांटे गड़े हैं
गिर रही
पहचान किनकी

सो रही है कुछ जगी है
नींद में खुलने लगी है
पंखरी
उनके हरम की.

।। उजले-हरे सवाल ।।

नीले-पीले दिन के साये
आंखों में, मन में कुहराये

दूर गुलाबों
के अंधियारे
अहसानों के
जंगल सारे
रात-रात भर क्या सपनाये

गहरे काले
तालों वाले
उजले हरे
सवालों वाले
धुंध अकेले में गहराये

देर महज थी
छूने भर की
गर्म हवाएं
घर-बाहर की
जल पर झुके हिरन भरमाये.

।। लक्ष्य के पठार ।।

अगम रहे लक्ष्य के पठार
कितनी अग्नि-परीक्षाओं के बाद

रुका रहा सूर्योदय
वहमों के नाम
सुलगतीं संध्याएं
बहसों में राम

दुर्वह पांवों में बेड़ियां पहाड़
उमस भरी अविरल यात्राओं के बाद

धुएं की आकृतियां
पात्र, देश-काल
कालिख का घोल
सहज पी गया मराल

शव-सी इच्छाएं हुईं तिल से ताड़
शिविरों में कैद यन्त्रणाओं के बाद

सर्द आवाजों के
तीखे अहसास
कुछ कृतघ्न चेहरे
फैले आस-पास

सुख जो टूटा, बहा ले गयी धार
गलत हुए क्षण सभी चर्चाओं के बाद.

।। अंधेरे में आंखें ।।

अच्छा तो है, शहरों के नाम गिनें
भीड़ों में खो जायें

बिस्तर पर नींदों के जंगल
दरवाजे दंगों के किस्से
सड़कों पर पेड़ के जुलूस
मौन पड़े हैं जिनके हिस्से
थके पांव घिसटें
अच्छा है घाटी के पीछे सो जायें

दुखती रग, कौन-सी उंगलियां
हौले-से चुपके छू जातीं
गलत है, अंधेरे में आंखें
जुगनू से क्षण भर टकरातीं
आंखों में गहराये
कुहरे छीलें क्यों? उनके हो जायें

दुखते पिछले तमाम दिन
टोह रहे दुधमुँहे अंधेरे
आंखों में फूटते सवालों-से
किस सागर-तट को जा घेरें
कुएं में उझकने से
अच्छा है चिनगारी बो जायें.

।। अन्दरुनी सन्नाटे ।।

देहरी पर की हवा बहुत शरमाये चलती है
दिन-दुपहर-शामों को रंग उड़ाये चलती है

घासों-पटी पहाड़ियों की छाँवों वाले खेत
धूपों-ढंके बबूलों के पिछले सिलसिले समेत
उम्र भर की बातें यों दुहराये चलती है

दूर सिवाने पर फूले फिर से गूलर के फूल
अन्दरूनी सन्नाटे देते गये बात को तूल
जो नहीं समझे उसको समझाये चलती है

खुली पीठ पर छितराये लम्बे-लहरीले केश
दोनों बाँह उछाल त्वरा में कोई कहती 'बेस'
और पलटकर भीगी पलक बचाये चलती है.

।। सिहरे दो पल ।।

अभी नहीं
अभी नहीं बरसेगा बादल
कांपती शिराओं की बैजनी नदी
ठहरे मादल

होगा वह और जहां आंगन-दीवारों
पर जमती काई होगी
सुबह के मुँडेरे पर पंख खोल
गौरैया फिर बतियायी होगी
अभी नहीं
अभी नहीं दरकेगा काजल
मौसम की देह लगी हल्दी
फहरे आंचल

पेड़ की फुनगियों से सूर्य बंधा
रोशनी किनारे की झील बनी
आंखों में, मन में, मंजरियों में
शेष हुई मौसम की सनसनी
अभी नहीं
अभी नहीं गूँजेगी पायल
नींदों के पांव लगी मेंहदी
सिहरे दो पल.

।। बलुआहे घाव ।।

दीख गया फिर अपना गांव बड़ी दूर से
झूल गये घोंसले बया के खजूर-से

हकलाते शब्दों से
कुछ कच्चे घर को
अफवाहों से उठते
आंधी-पतझर को
सौंप दिये बलुआहे घाव मजूर-से

घूरे में पके हुए
आलू-सी यादें
सीठी-से फिके-बिके
मसविदे-इरादे
लहके शिरा-शिरा स्वभाव बबूर-से

घंटी का टुन-टुन
और मां का बरजना
दादी की एकादशी
तारा का उगना
केले के पात लिखे भाव सिनूर के
बाबू की आंख के अभाव मयूर-से.

।। बादल लौट आ ।।

दुख रही है अब नदी की देह
बादल लौट आ

छू लिये हैं पांव संझा के
सीपियों ने खोल अपने पंख
होंठ तक पहुंचे हुए अनुबन्ध के
सौंप डाले कई उजले शंख
हो गया है इन्तजार विदेह
बादल लौट आ

बह चली हैं बैजनी नदियां
खोलकर कत्थई हवा के पाल
लिखे गेरू से नयन के गीत
छपे कोंपल पर सुरभि के हाल
खेत के पतले हुए हैं रेह
बादल लौट आ

फूलते पीले पलासों में
कांपते हैं खुशबुओं के चाव
रुकी धारों में कई दिन से
हौसले से कागजों की नाव
उग रहा है मौसमी संदेह
बादल लौट आ.

।। खुली हथेली पहने ।।

हां, कुछ भी तो होता - फूल, नदी, मौसम
कोंपल-कोंपल लगती जैसे शापों के अलबम

टूटेगा, पर कब तक यह सिलसिला अंधेरे का
पत्ता-पत्ता में बांट गया दशहरा उजाले का
एक बूंद चांदनी और फिर एक तार सरगम
चुभती कटे हुये बिम्बों में टूटी हुई कसम

विश्वासों के उगे करोटन झुलस गये ऐसे
लगा धुंधलके बीच कई पथराये होंठ हंसे
अपने ही हौसले लूटकर चली गयी मरियम
अर्थहीन हो गया अचानक आंखों का परचम

यहां काढ़ते ऐपन उभरी आकृति भीड़ों की
फिसलन भरी सीढ़ियां टहनी भीगे चीड़ों की
दुविधाओं के जंगल जलते आबनूस हरदम
खुली हथेली पहने ठहरीं दो आंखें गुमसुम.

।। आंखों में घुलते आभार ।।

थोड़ी-सी अनबन औ' ढेर-सा दुलार
अनफूले कैसे रह पायेंगे
आंगन भर अपने कंचनार

छंटते ही कुहरे का बादल
सतह तक दीखेगी नदी
अधरस्ते छेड़ेंगे महुवे
ताने के साथ दिल्लगी
सारे दिन बांटेंगे हंसते मनुहार
अनदीखे कैसे रह पायेंगे
सांसों में उठते-से ज्वार

टहनियों-पातों पर उभरेंगे चुम्बन
चुप-चुप तकेंगी हवाएं
हंसी-हंसी में बढ़ेंगी बातें
मुसकेंगी हौले दिशाएं
रंगमहल होगा पहाड़ी के पार
अनबोले कैसे रह पायेंगे
आंखों में घुलते आभार.

हाथों में एक-दो मूंगफलियां
रंगारंग अन्तरंग बातें
यादों में तह करके रख लें हम
पार्कों में हुई मुलाकातें

एक हंसी फेंक कर इधर-उधर
दूबों को सहलाना प्यार से
पल्लू को स्वतः खिसकने दिया
माथ झुका गंधिल आभार से
कसी हुई पसीजती हथेलियां
उमड़-घुमड़ गुजरीं बरसातें

पिछले पन्ने बरबस खुल गये
जिनमें बीतता समय थम गया
अनुबंधों को अनुमोदन देने
होंठों का एक दस्तखत नया
उजले मन के कपास-से रेशे
सपनों के और सूत कातें.

।। जहर चांदनी का ।।

सुविधा के नाम पर जहर चांदनी का
पीते हैं लोग इस पराये शहर में

धुंध पसर जाती है बृक्ष-वनस्पतियों पर
कहीं से न मिलती जब मौसम की आहट
आसमान अपना जल खुद ही पी जाता
नदियों पर खिंची सूर्य-तापों की सलवट
निर्मम संबंधों के अंतहीन भ्रम का
उघड़ता है टांका संझियाये शहर में

खंड-खंड स्वप्नों की त्रासदी समेटकर
जलती विश्वासों की दुहरी शहतीरें
आंखों में कहीं नहीं उगती अब नील झील
ऊसर धरती पर ये स्याह-सी लकीरें
विवशता में बार-बार क्षरित हुए क्षण का
हिलता है मुखौटा मनुहाये शहर में

कितने निश्चिन्त यहां लगते सब-के-सब
खुद को बेकारी के वक्तों से ढंककर
कुछ सुविधाभोगी इस कोढ़ी व्यवस्था के
रचते रोमान गयी उम्रों से हटकर
सामने ही मरियम की कुलटा कोख के
जलते ही जंगल उग आये शहर में.

।। अखबारों पर भविष्य ।।

कुछ दिनों पहले
हर सपना एक सही सुख था
हीरे का रहना ही दुख था

तिनके-से उड़े, दिन हुये रेशमी नशे
नाम-पते सब हिरन हुये, दूर जा बसे
मोम-से पिघले
वादों का एक कमल-मुख था
कथा-क्रम में हंसता आमुख था

हीरे सब कांच हो गये अंधेरे में चमके
मधुबौरित वृक्ष भर गये शापों से क्षण के
मेघ-से रुपहले
नारों का बना झरना-मुख था
अखबारों पर भविष्य सम्मुख था
कुछ दिनों पहले.

।। दिन अखबार-सा ।।

दिन थके कहार-सा हुआ
काटना पहाड़-सा हुआ

कई सिलसिले अजीब-से
देखना उन्हें करीब से
पंख लगा वायदे उड़े
टंगे रहे हम सलीब से
धूप आबनूस-सी हुई
दिन किसी दयार-सा हुआ

हाथों के हौसले पसीजते
अंधेरे में आंखे मींचते
कहां से उठे, कहां गिरे
टकरा के खिड़की, दहलीज से
धूल चुभोती हुई सुई
दिन घर - दीवार-सा हुआ

कहां आ गये यही सोचते
मकड़ी के जालों को नोचते
भीड़ में, अकेले में सरेआम
आदमी जुबानों क़ो बेचते
घटनाएं हुईं अनहुई
दिन तो अखबार-सा हुआ.

।। अंधेरे के पांव ।।

आज कुछ पहले सितारे सो गये
अंधेरे के पांव लम्बे हो गये

ओस घासों में दुबक कर सो गई
सुनो! आधी रात शायद हो गई
दुधमुंहें ये किनारे, ये कश्तियां
सब नदी की लोरियों में खो गये.

फूल, पत्ते
जड़, तने
पेड़ छप्पर डाल के
चलते बने

शहद के छत्ते बया के घोंसले
फिर न लौट आंधियों में जो गये.

।। इन्तजारों में बुना साया ।।

तुम न बोलोगे तुम्हारी बात बोलेगी
उम्र भर ठहरी हुई बरसात बोलेगी

देर तक मौसम झुका
ओसों भरा होगा
इन्तजारों में बुना
साया खड़ा होगा
आंखों में खुशबू की बारात बोलेगी

उंगलियों में दर्द का कुछ
मौन मधु बजता
देश सुरभित रोशनी का
ताल-सा लगता
बैजनी-कत्थई उदासी साथ बोलेगी

ये कमलदह झील में
तिरती हुई नावें
बिन बुलाये दिन कभी
आवें, चले आवें
रात सिर धुनती सड़क की कात बोलेगी.

।। शीशे-सी चनकी मुस्कान ।।

सपने-से लगते हैं बीते क्षण मेरे
जाने-अनजाने अपराध भरी शाम

खिड़की में आ सिहरा चांद
मन की मजबूरी में डूबा
प्राण का अमलतास पीला
क्षण के अंधेरे में ऊबा
अपने-से लगते हैं आंधी के फेरे
बांहों में दुखती पहचान भरी शाम

उलझन में बार-बार भटके
मन के अबोधे हिरन
साधों की सावनी दुपहरी
छीन-छीन जाती किरन
कंपने-से लगते हैं बादल के घेरे
बंधी हुई जूड़ों-सी मान भरी शाम

अब भी अकेली ही दीखती
भीड़ों में जीकर गुमनाम
अनुगूंजों में भर लेता तुमको
घाटी का बादल बदनाम
तपने-से लगते हैं माथ पर सबेरे
शीशे-सी चनकी मुस्कान भरी शाम.

।। गुच्छों के गुच्छ गुलमुहर ।।

दिन-दिन भर, सांझ-सांझ भर
आंखों में खिल जाते
गुच्छों के गुच्छ गुलमुहर

रचता चला गया मन में
एक वही पहला आकाश
दहके अमलतास और तेरे
दो होंठ आस-पास
चाहों के रेशे में बांध कर लहर
आंखों में बिछ जाते
गुच्छों के गुच्छ गुलमुहर

काजर की नदी भरती गयी
रंग-विरंगी मछलियां
टहनी भर छूते उड़ आतीं
ढेर-सी लाल तितलियां
बादल ठहर गये हिरनों के घर
आंखों में झर जाते
गुच्छों के गुच्छ गुलमुहर

इन्द्रकमल बंधता गया मन का
दृष्टि जहां ठहरी
चुप होने कहने में फर्क कहां
रंगों से बातचीत गहरी
आंचल में गांठ लगी होठों से कसकर
आंखों में हिल जाते
गुच्छों के गुच्छ गुलमुहर.

।। ताल का दर्पण ।।

कुछ न सुनें, कुछ न कहें
आओ ! कुछ देर यूंही घास पर
बैठे रहें

टूटती है देह जैसे मन
भूलता ही नहीं गोया --
दूर तक फैला हुआ यह ताल का दर्पण

चांदनी में
फड़फड़ाते घाटियों के पंख
उड़ती मछलियों के शंख
पूछती हैं - खुली हुई हथेलियां
कैसे सहें.

।। जलती सुबह ।।

बरसों से फूल-पात हाथ में पड़े हुये

अंजुरी में उलझे कुछ धागे
सायेहीन साये हैं आगे
पत्थर के गमले में कल से पत्ते झड़े हुये

जलती सुबह, सुलगती शामें
रिश्तों की बारूद हवा में
मेघ-वनों के इन्द्रधनुष जुड़े में जड़े हुये

शोर-शराबों में दिन डूबा
चांद अंधेरे का मनसूबा
कोहरे की परछाई में कुछ सपने तिरे हुये.

।। रोटी का स्वाद ।।

टिनही थाली रखी -
आध टूक रोटी का स्वाद हो गया
चन्द्रमा विवाद हो गया

हाथों से पेटों तक
बुने हुये जाले
अपने घर नागफनी
रोकती उजाले
चुभते संदर्भ बहुत -
मूल नहीं जैसे अनुवाद हो गया
चन्द्रमा विवाद हो गया

गोबर से लिपी हुई
घरों की उदासी
भूख ने लिखा है
हर सपना बासी
नीलाम हुआ मौसम
कथाओं से कटता संवाद हो गया
चन्द्रमा विवाद हो गया

खुद से भी बातचीत
करना होता मना
बासी अखबार पर
जैसे भविष्य देखना
खंड-खंड बिखरा -
जैसे-तैसे का अनुभाग हो गया
चन्द्रमा विवाद हो गया.

।। गंध लिखी देहरी ।।

मां की परछाई-सी लगती
गोरी-दुबली शाम
पिता-सरीखे दिन के माथे
चूने लगता घाम

दरवाजे के सांकल --
छाप अंगुलियों की ठहरी
भुनी हुई सूजी की मीठी
गंध लिखी देहरी
याद बहुत आते हैं घर के
परिचय और प्रणाम

उजले-पीले कई-कई
संदर्भ सलोने-से
तुतली जिद पर गुस्से लगते
कांच खिलौने के
नूपुर पहन बहन का हंसना
फिरना सारा गाम

कहीं-कहीं दुखती है
घर की छोटी आमदनी
धुआं पहनते चौके
बुनते केवल नागफनी
मिट्टी के प्याले-सी दरकी
उमर हुई गुमनाम.

।। होंठ के आखर ।।

लौट आये घाटियों में
वही पहला प्यार

गाल पर उंगली धरे पीले-हरे दिन
स्वप्न के इन कागजों पर आंख के पिन
गंध में डूबे हुये गुमसुम
मन लिखे स्वीकार

होंठ के आखर उगे आंखों भले-से
रेत-मछली-बादलों के सिलसिले-से
नाम टलने का नहीं ले
दुखों के पहाड़

खड़े हैं जंगल धुओं के रोशनी के हाशिये
सन्नाटे घाटी के टेसू-वन आग पिये
जुड़े हुए पल ऐसे सूखे
दुख रहे आभार.

।। हंसी-हंसी में ।।

आंचल में बंध जाओ रे दिन
छोड़-छोड़ आवारापन

शुरुआतों के लिये रचेंगी ऋतुएं अनुक्रम
रंग-विरंगे मुहावरे सिरजेंगी गीतम
बातों के अंदाज जहां ले जायें, घेरे--
आंखों में बंध जाओ रे दिन
छोड़-छोड़ वनजारापन

टूटेगा संदर्भ उठेगा नहीं भीड़ से ऊपर
दबे पांव गुजरेगा क्षण असहाय बनेगा बेपर
आमुख बनते रहो गीत गुनते सांझ-सबेरे
सांसों में बंध जाओ रे दिन
छोड़-छोड़ बेचारापन

हंसी-हंसी में आज हुईं दोनों आंखें नम
तुम-सा होगा कौन अयश पाये, बोले कम
मेरे सांचे में ढल के देखो बहुतेरे
बातों में बंध जाओ रे दिन
छोड़-छोड़ अनजानापन.

।। सुआपंखिया शाम ।।

केसर रंग-रंगा मन मेरा
सुआपंखिया शाम है
बड़े प्यार से सात रंग में
लिखा तुम्हारा नाम है

सौ आमंत्रण बजे स्नेह के
बरसे रंग सुहाग के
यह कैसी कोमलता आंखें
सजल-सजल अनुराग से

थर-थर कंपते से होठों पर
लगता पूर्णविराम है
और हथेली में फूलों से
लिखा तुम्हारा नाम है

खुलने लगे पृष्ठ सब पिछले
बीते गये क्षण-क्षण के
परत-दर-परत लगी गमकने
पंख लगे दर्पण के

चंदन-वन की छांहें अलसीं
अंकित 'ललित-ललाम' है
तन्मय चुम्बन-सिक्त अधर पर
लिखा तुम्हारा नाम है.

।। जल-गीत ।।

कटे हुए पंखों से उड़ते
मेघों के टुकड़े
जाने क्यों अब के सावन
जल-गीत नहीं उमड़े

सोंधी गंध लिये धरती
चुपचाप रही सोई
सांसों का सम्मोहन चुपके
दाब सहज रोई
आपस में जुड़नेवाले क्षण
लगे टूट - बिखरे

मिला पांख से पांख -
न निकले बगुलों के जोड़े
फड़-फड़ उड़े सूखते पत्ते
घाटी कागज-कोरे

टूट गई पायल-सी लगती
मेड़ों की सतरें.

।। याद-घर लगते मखान से ।।

चांदी की थाली में दूब-धान - से
याद-घर लगते उजले मखान - से

जले हुये इंधन, खाली दियासलाई
भाभी के अनबांधे केश औ' कलाई
धुओं भरे संवलाये कमरों के कोने
बांट रहे हाथ-हाथ खीर औ' फलाई
दूरागत गीतों की सुघर तान - से
याद-घर लगते उजले मखान - से

लाल फूल गेंदा के बहिना की टिकली
हल्दी के हाथ लिये आंगन से निकली
दो महीने बाद मिली भैया की चिट्ठी
लगा डाल छूते ही उड़ी लाल तितली
हंसी बनी शोर गूंजती विहान - से
याद-घर लगते उजले मखान - से

द्वार के कुएं पर खिलना कनेर का
हरसिंगार चुनना वह भोर-भोर का
कसमों की डोर बंधी प्रीति का उजास
तपना हथेलियों पर अमलतास का
बार-बार खत लिखने का मां का वादा
रंगों की छाप देह-मन-दलान - से
याद-घर लगते उजले मखान - से.

।। सूरज के रंग ।।

आया है दिन मेज पर
मुट्ठी को भींचते हुये

लगते है कई-कई कान
नुकीले दीवाल से लगे
जूतों की शक्ल से हुये
घर, भाई, देह, रतजगे
दुखते कटे इन्तजार
हाथ में पसीजते हुये

भूल गये सूरज के रंग
जंगल को टोहते रहे
धोने को पीठ के निशान
परिचय को रोपते रहे
सागर को लिये उम्र भर
वंश-वृक्ष सींचते हुये

ठगे गये सोच-सोचकर
हम बहुत कुछ समझ गये
जंग को खुरच देना भी -
घटना हुई, हम उलझ गये
सीखे क्या होता युद्ध
फिसलनें उलीचते हुये.

।। कोई बच्ची ।।

जब कभी कोई बच्ची
वर्षा में नहाती है
घर की याद आती है

डाल पकड़ तोड़ना
गुच्छे कनेर के
होंठ दबी हंसी
पूछना घेर के
हर बार गंध नहायी हवा
इस जगह लगाती है
घर की याद आती है

जैसे रख दी गई
रंगों के घर में
एक अबूझ प्यार
समा गया हो नजर में
होते ही सुबह सांसें
लाल ईंट-सी पकाती हैं
घर की याद आती है
इमामी की महक से
भरी हुई दुपहरी
भुनी हुई सूजी की
गंध लिखी देहरी
गेरू से रंगी आंखें
इस घाट पर लजाती हैं
घर की याद आती है.

।। पानी के पांव ।।

यादें होतीं भली घर की
उदासी जैसे सिहरते पांव पानी के
खुशी जैसे इत्र की शीशी कहीं ढरकी

सुबह रची माथे पर
मां के आशीषों - सी
दुपहरी पिता की प्रतीक्षा
में कासों - सी
बदल जाती अनमनी घड़ी भी शहर की

जिद में डूबी खनकती
हँसी चौदह साल की
दुख कपूर से जलते
आँख में सवाल की
जीने को चिट्ठी मुहर लगी कानपुर की

बाहर की धूल झाड़
खिड़की में खड़ा होना
अपनी परछाई का
खुद से बड़ा होना
तीन दिनों की चुप्पी दहकती दफ्तर की.

।। रोली-सिन्दूर सने ।।

आसमानी घटा बहुत खलती है
पश्चिम की हवा साथ चलती है

उलझते ही जा रहे हैं बांस-वन के पार
घोलती है बाँसुरी जो भरम क्षण दो-चार
सिहरती लय क्या पता पहुंचती है
स्वप्न के अभिषेक में पिघलती है

रोली - सिंन्दूर - सने हाथ के निशान
छपते हैं जहां - जहां आंख बने कान
भाषा की गंध देह मलती है
सांस - बंधी प्रीत नदी लगती है

सांवले पड़ते हुए पत्तों की छांह
बहुत-सी उदासी की थमी हुई बांह
पेड़ों से पंखुरी बरसती है
चिड़ियों के पंख - सी चमकती है.

।। नाम और पते ।।

लिख-लिखकर काट दिये
नाम और पते
रात एक स्वप्न-कलश फूट गया
सुबह बीत गई सिसकते

बार-बार छूता वह धूप-सा तुम्हारा मन
वर्षा के पहले आसार-सा भिगोता मन
टूट गई टिकली-से मौसम के हाशिये
धीरे-धीरे गये खिसकते

गालों पर सूख गये आंसू के दाग
पिछले संदर्भ कई बुनते हैं आग
थके हुए फूलों की खुशबू के गीत ये
आंखों में रहे सुलगते

अकेला गुलाब का उगना चुपचाप
पंख - कटे पक्षी का जीवित अहसास
बच्चों के हाथों में फूलों के बीज ये
चीखों-से गये दहकते.

।। झुलसी हुई मछलियां ।।

जहर के रंग जैसे दिन कहीं जीने नहीं देंगे
चलो हम राख पर भिनसार का
सूरज उगा आयें

ये सब दीखते हैं जो नहीं
ऐसे हुए होते
नहीं हम अंधकारों को फसल
के नाम से बोते
ये फौजी बूट शिशु की देह को ऐसे कुचल देंगे
चलो, हम प्रार्थनाओं में झुके
सिर को उठा आयें

तटों को दी सागर ने
रेत में झुलसी हुई मछलियां
घटनाएं दुखती जैसे
हाथ की कटी हुई उंगलियां
ये घर-बार-मकान सभी कुछ धुआं पहन लेंगे
चलो, हम कैद आंखों में नया
गुस्सा जगा आयें.

।। उदास लोग ।।

एक साथ ये उदास लोग
लौह की कतार हो गये
सर्द मौसमों के लिए
आग के पहाड़ बो गये

फिर बढ़ा दिया इन्हें - उन्हें
नयी किताब की तरफ भूख ने
आंखों की स्याही से लिखती सुबहें
कागज-सी लगी दीखने
ताम्बे के तार से खरीदी हल्दी-सी
हंसिए की धार हो गये

छिपकर फिर वसंत आया
पिछले सपने को लौटाने
फिर उधार होती जिद लौट गई
थकी हुई हंसी को सुलाने
खून - पसीने सुलगते जैसे
आतिशी अनार हो गये

परछाई-सी छोटी सड़कें
इस जलती दुपहर की
खुद में बन्द हुई डिब्बे-सी
भूख तिबासी घर की
सोने की थालों वाले दिन
डूबते महार हो गये.

।। उजली सौगन्ध ।।

हीरे की अंगूठी भीड़ में गंवा गई
ताजा-सा मोरपंख होंठ से छुवा गई
पानी पर हिलती परछाई

आसमान मार गया
फूलों के बान
छाया में हिलती है
कल की पहचान

सुबह-सुबह रक्तजवा माथ पर उगा गई
पानी पर हिलती परछाई

दूरागत हँसियों-से
लगते हैं गांव
बीते दिन की यादें
बंधी हुई नाव

'गीत गोविन्दम' को हाथों में थमा गई
पानी पर हिलती परछाई

घुले हुए रंगों-सी
पर्त-पर्त मन की
खनके हवा ज्यों
हरे खजूर-वन की
स्वागत में उजली सौगन्ध को पिन्हा गई
पानी पर हिलती परछाई.

।। मशाल की तरह हुए हम ।।

धूप-गाछ और हवा की तरह बढ़े हम
प्रतीप-यात्रा में कहीं नहीं रहे हम

राखों की ढेरों में
चिनगी सुलगाये
मिट्टी की पर्त तोड़
मन से अंखुआये
वर्षा की धार खेत में कहे गये हम

बाहर से झुलसे पर
भीतर से भरे हुए
कसी हुई मुट्ठी को
अस्त्र-से किये हुए
अपनी ही शर्त स्वाभिमान से जिये हम

सूखे और बाढ़ की
कथाओं में जीना
भूल गये जब से
बहने लगा पसीना
अंधकार में मशाल की तरह हुए हम.

प्रस्तुत गीतों में जो कुछ असम्प्रेष्य
गया है, उसकी ध्वनि कहीं नहीं है।
सम्प्रेषित है उसमें अव्यक्त सच
सर्वाधिक उत्तेजक भाग वय और बोध
सीमानुपात में बड़ी प्रभावशीलता
प्रकट किया गया है।

- राजेन्द्र प्रसाद सि

कवयित्री में - एक बेह
वेगवती-अप्रतिहत तड़प है। अनुभूति
व्यक्त करने की : अनुभूति-विशेष
व्यक्तिकरण के साथ कुछ अछूता प्रस्तु
करने की और किसी अभुक्त
उद्घाटित करने की।

- ओम प्रभाक

आपने गीतों में बहुत सारे शब्दों
गढ़ने का प्रयत्न किया है। कुछ श
अपने खुरदुरेपन में ही अच्छे लगते
आपके गीतों में उनकी अनुभूति
कच्चापन ही उनकी उपलब्धि है।

- देवेन्द्र कुमा

नवगीत की एकमात्र कवयित्री.....

- उमाकान्त मालवी

आपके विषय में मेरी अपनी धारणा है
गीत को आपसे बड़ी अपेक्षाएं हैं।

- रमेश रंज

शान्ति सुमन के ये गीत केवल नवइय
की तलाश के लिये नहीं लिखे गये
बल्कि ये मध्यवर्ग की समकालीन जिन्द
के संवेदनशील क्षणों के दस्तावेज हैं।

- विश्वनाथ प्रसा

शान्ति सुमन के गीतों में नारी-उचि
मार्दव अधिक है, घरेलूपन भी है। गी
पुरअसर हैं।

- विश्वम्भर नाथ उपाध्या

शान्ति सुमन

जन्म : 15 सितम्बर, 1942, उत्तर बिहार के सहर्षा जिला के कासीमपुर गाँव में।

शिक्षा : एम० ए० (हिन्दी), पीएच० डी०

उपलब्धियाँ : प्रकाशन : ग्यारह गीत संग्रह, दो कविता संग्रह, एक उपन्यास, एक आलोचना।

सम्पादन : सर्जना, अन्यथा, भारतीय साहित्य, कन्टेम्पररी इन्डियन लिटरेचर (दोनों ही दिल्ली से), बीज। देश की प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में रचनायें प्रकाशित एवं विभिन्न आकाशवाणी तथा दूरदर्शन केन्द्रों से प्रसारित। गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर सर्वभाषा कवि-सम्मेलन (दिल्ली) में तमिल कविता का हिन्दी में अनुवाद-पाठ।

पुरस्कार : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से साहित्य सेवा सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से कविरत्न सम्मान, बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा महादेवी वर्मा सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत। अवंतिका (दिल्ली) से विशिष्ट साहित्य सम्मान, मैथिली साहित्य परिषद् से विद्यावाचस्पति का सम्मान, नारी सशक्तीकरण के उपलक्ष्य में सुरंगमा सम्मान, विन्ध्य प्रदेश से साहित्यमणि सम्मान, 2005 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से साहित्यभारती एवं 2006 में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा सौहार्द सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत।

सम्प्रति : बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय की अंगीभूत इकाई एम० डी० डी० एम० कालेज मुजफ्फरपुर-842002 के हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष पद से सेवामुक्त होकर स्वंतत्र लेखन।

सम्पर्क : ईशान, मीठनपुरा, क्लब रोड, (वी.सी. गली), रमना, मुजफ्फरपुर-02

वर्तमान सम्पर्क : 36, आफीसर्स फ्लैट, जुबली रोड, नार्दर्न टाउन, जमशेदपुर-1, झारखण्ड

दूरभाष : 0621-2270895, मो० - 9430917356